Date:16-12-21

सुप्रीम कोर्ट के दखल के कारण न्याय होता दिख रहा है

संपादकीय

उत्तर भारत के एक राज्य में सीएम की रैली में जब बेरोजगार टीचर्स ने सरकार-विरोधी नारे लगाना चाहा तो पुलिस ने उनका मुंह दबा दिया, जबकि एक अन्य राज्य में पुलिस के लोगों ने एक व्यापारी को अगवा कर फिरौती मांगी। इन दोनों राज्यों में विधान-सभा के चुनाव होने हैं। जहां पुलिस किडनैपिंग की घटना हुई, उसी में एक केंद्रीय गृह-राज्य मंत्री के बेटे और उसके साथियों ने हथियार लहराते हुए चार किसानों को अपनी गाड़ियों से कुचल कर मार डाला। पहले तो सरकार उन्हें गिरफ्तार नहीं कर रही थी लेकिन भला हो सुप्रीम कोर्ट की सख्ती का कि मंत्री का बेटा और उसके कुछ साथी गिरफ्तार हुए। फिर शुरू हुई बयानों में हेराफेरी ताकि पुलिस का केस कमजोर हो सके, निश्चयात्मक साक्ष्यों को कोर्ट में प्रस्तुत ना करना। नाराज सर्वोच्च कोर्ट को कहना पड़ा कि सरकार के इस रवैये से जांच पर भरोसा नहीं किया जा सकता। इतना बड़ा आरोप हाल के दौर में किसी भी सरकार पर सुप्रीम कोर्ट ने नहीं लगाया था। सुप्रीम कोर्ट ने बाहर के दो अधिकारियों और एक राज्य के अधिकारी का तीन-सदस्यीय विशेष जांच दल (एसआईटी) बनाया। लिहाज़ा लोकल पुलिस ने आईपीसी को जो हलकी धाराएं मंत्री-पुत्र और उसके साथियों के खिलाफ लगाई थीं उन्हें नई एसआईटी की रिपोर्ट पर कड़ी धाराओं में बदला गया। इस नई जांच में पाया गया कि मंत्री की जिस गाड़ी का इस्तेमाल अपराध में हुआ उसमें 315 बोर के दो खोखे मिले। यानी, मंत्री की भूमिका की जांच। जरा सोचें, अगर देश की सबसे बड़ी अदालत इस मामले का संज्ञान ना लेती तो क्या न्याय मिल पाता? क्या जो शिक्षक अपनी मांगों के लिए आवाज उठाना चाहते थे उनका मुंह दबाना पुलिस के कर्तव्य में आता है? जनसभा में विरोध एक सर्वमान्य सामान्य प्रजातांत्रिक प्रक्रिया है। लेकिन चाहे प्रजातंत्र हो या राजतंत्र, किसी भी दल की सरकार क्यों न हो, सत्ता में आने पर उनका चरित्र दमनकारी ही होता है। आभार इस कोर्ट का है, जिसके फैसले के कारण न्याय पर भरोसा बना हुआ है।

Date:16-12-21

कश्मीर में सुधार के दूसरे चरण की जरूरत है

चेतन भगत, (अंग्रेजी के उपन्यासकार)

अच्छी खबर : केंद्र शासित प्रदेश कश्मीर में नवंबर 2021 में रिकॉर्ड 1.27 लाख सैलानी आए। इसकी तुलना करें, तो नवंबर में सात सालों का औसत 54,200 है। वहीं नवंबर 2020 में 6327, 2019 में 12,086 और 2018 में 33,720 पर्यटक घाटी पहुंचे। भारत की आबादी के लिहाज से 1.27 लाख कुछ ज्यादा नहीं है, मतलब चार हजार पर्यटक रोजाना। पर हां, हमेशा संकट से घिरे रहने वाली सरज़मीं के लिए यह आशा की किरण हो सकती है। सैलानियों की यह संख्या कई गुना बढ़ सकती है। इसका मतलब होगा ज्यादा नौकरियां, बेहतर अर्थव्यवस्था और स्थानीय लोगों के लिए समग्र रूप से समृद्धि। यही है जो अंततः कश्मीर समस्या का समाधान करेगा- लोगों के हाथों में पैसा, बेहतर जिंदगी की इच्छा और अच्छे कल की उम्मीद।

जाहिर है कि सिर्फ पर्यटन से ही अर्थव्यवस्था ठीक नहीं हो सकती। दूसरे व्यवसाय बढ़ाने के उपाय करना भी जरूरी है। आर्टिकल 370 खत्म करना, यूटी का दर्जा मिलना और भूमि कानूनों में बदलाव घाटी के संकट को ठीक करने के लिए हालिया पहले चरण के उपाय थे। पर जल्दबाजी में किए इन सुधारों से हर चीज का समाधान नहीं निकलेगा, पर हां, पहले कदम के तौर पर ये जरूरी थे। दशकों से चली आ रही बैठकें और विशेषज्ञों की बातचीत सिर्फ एक ही निष्कर्ष पर पहुंची- ये मामला बहुत जटिल है। धारा 370 हटाकर और पहले चरण के कुछ उपायों से हमने इस बारे में कम से कम कुछ किया तो।

ये भी सही है कि चंद कानून पास कर देने से जनमानस नहीं बदलता। जम्मू और लद्दाख बदलाव के बाद ठीक-ठाक करते दिख रहे हैं। हालांकि कश्मीर घाटी के स्थानीय लोग नए बदलावों को पूरी तरह स्वीकार नहीं कर पाए हैं।

कुछ चुनिंदा बौद्धिक लोग 'दिल जीतने' और 'वाकई इन लोगों को सुनने' की सलाह देते हैं। पर किसी को पता नहीं कि इसे धरातल पर कैसे किया जाए, विशेष तौर पर जब इनमें से कई दिल भारत के खिलाफ हैं या घाटी को लेकर भारत की योजना के खिलाफ हैं। मेरा मानना है कि अगर भारत, घाटी में सबकुछ ठीक करने की अपनी कोशिशें करना छोड़ दे तो इलाके का तेजी से पतन हो जाएगा। पाकिस्तान के प्रभाव में आकर ड्रग और हथियारों से भरा, कट्टरता में फंसा एक और अफगानिस्तान बन जाएगा। इसलिए 'आइए दिल जीतें' वाला यह तर्क थोड़ा ट्रिकी है, विशेषतौर पर जब सवालों में घिरा दिल आपको हकीकत में बेहतर जगह नहीं ले जा रहा।

कश्मीर में वही काम करेगा, जो दुनिया के इतिहास में हमेशा काम करता आया है- लोगों के हाथों में पैसा और एक भरोसा कि बेहतर जिंदगी होती है अगर वे इसके लिए काम करें। क्योंकि अगर आपका कोई बढ़ता हुआ व्यवसाय है या किसी अंतरराष्ट्रीय कंपनी में नौकरी है, तो ऐसा शायद ही होगा कि आप पत्थरबाजी करें या बम फेंके। (हां, कट्टर सॉफ्टवेयर इंजीनियर भी हैं, वे सिर्फ अपवाद हैं।)

इसलिए बिजनेस को बढ़ावा देना, पर्यटन बढ़ाना और नौकरियां पैदा करना ही कश्मीर मामले को सुलझाने का इकलौता उपाय है। व्यापार में वृद्धि (और चाहिए) का मतलब बड़े व्यवसायों के लिए भी बढ़ावा होगा। ये इलाका बड़ी कंपनियों से वंचित क्यों रहे, जबकि वे लाखों नौकरियां दे सकती हैं? क्यों भारत में बुद्धिजीवियों का एक वर्ग बिजनेस को सिर्फ महिमामंडित छोटे कुटीर उद्योगों तक ही देखता है? हम ऐसा क्यों सोचते हैं कि कश्मीरियों के पास कारपेट बुनने या लोगों को नौका विहार पर ले जाने की ही सबसे अच्छी नौकरी हो सकती है? क्या कश्मीरी युवा साइट इंजीनियर, होटल के जीएम या प्रोग्रामर नहीं बनना चाहते? बड़े व्यवसाय पहुंचे बिना यह कैसे संभव होगा? हम बड़े बिजनेस को इतना नापसंद क्यों करते हैं? क्या हम सब रोजाना उन बड़े बिजनेस के उत्पाद इस्तेमाल नहीं कर रहे- जैसे माइक्रोसॉफ्ट, गूगल, वाट्सएप।

हालांकि बड़े बिजनेस और बड़े निवेश किसी इलाके में तब तक नहीं पहुंचते जब तक कुछ शर्तें पूरी न हों। पहली तो यह कि इलाका सुरक्षित होना चाहिए। दूसरा, व्यवसाय में एक अच्छी ग्रोथ और रिटर्न की संभावनाएं दिखनी चाहिए। तीसरा, कम राजनीतिक हस्तक्षेप या अनिश्चितता के बिना व्यापार में आसानी हो। कश्मीर में यह सब होने के लिए सरकार को इस इलाके के लिए दूसरे चरण की नीतियां बनानी होंगी। सुरक्षा के लिए चाक-चौबंद व्यवस्था के साथ सुरक्षित इलाके और सोसायटीज़ बनानी होंगी, जहां सुरक्षा सर्वोपरि हो। इन इलाकों में किसी भी आतंकी वारदात को कड़ाई से निपटना होगा, ना कि 'दिल जीतने वाली या भटके हुए नौजवानों' वाला राग अलापते हुए। एक वारदात पूरे इलाके की सुरक्षा धारणा चौपट कर सकती है और इससे सच में लाखों नौकरियां जा सकती हैं।

कश्मीर में अच्छे रिटर्न के लिए सरकार को कम कर-क्षेत्र की घोषणा करनी चाहिए (उदाहरण के लिए जैसे अमेरिका का कम टैक्स वाला इलाका- डेलावेयर) यह व्यवसायों को वहां आने के लिए प्रोत्साहित कर सकता है। कश्मीर के नए भूमि कानून भारत से किसी को भी वहां जमीन खरीदने की इजाजत देते हैं। ये कश्मीर को बेच देना नहीं है। यह किसी जगह की मूलभूत जरूरत होती है, जो बिजनेस को आकर्षित करती है

पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए कश्मीर को अपग्रेड होने की जरूरत है। ये खूबसूरत जगह है, लेकिन लगता है कि 1980 के पर्यटन में ही फंसी हुई है। पुरानी यादें अलग हैं, पर डल झील पर नांव की धीमी सवारी एक समय के बाद बोरिंग हो सकती है। भारत के हिल स्टेशंस को अब सनराइज-सनसेट पॉइंट से परे जाने की जरूरत है। जगहों की फिर से कल्पना करने की जरूरत है, खासकर आज की इंस्टाग्राम पीढ़ी में। साथ ही यह एहसास होना चाहिए कि अधिकांश पर्यटक मनोरंजन और आराम फरमाने के लिए आते हैं। किसी को सम्मोहित करने की प्राकृतिक सुंदरता की भी अपनी सीमा होती है।

युवा पीढ़ी को कश्मीर में आकर्षित करने के लिए वहां कैफे, बार होना चाहिए। कुछ लोग कहते हैं कि स्थानीय लोग और उनकी धार्मिक मान्यताएं इसके आड़े आती हैं। उनके लिए एक शब्द है- सहिष्णुता। कोई भी ऐसा अच्छा पर्यटन स्थल नहीं, जहां आपको ड्रिंक न मिले। (भले ही मैं एल्कोहल को बढ़ावा नहीं देता) यूएई जैसे इस्लामिक मुल्कों ने भी स्थानीय मान्यताओं और पर्यटकों की जरूरतों में तालमेल बना रखा है। दुबई में आपको ड्रिंक्स मिल सकती है। यह सब स्वीकार करने की बात है और ना कि अपनी मान्यताएं दूसरों पर थोपने की बात। याद रखें, पर्यटन = युवाओं के लिए नौकरियां= शांति और कश्मीरी समस्याओं का समाधान। कश्मीर को सुधार के दूसरे चरण की जरूरत है, जिससे वहां की अर्थव्यवस्था चलेगा और नौकरियां पैदा होंगी। हां, अंततः तो यह दिल जीतना ही है। लेकिन पता नहीं क्यों लोगों की जेब में पैसों की मदद करके उनका दिल जीतना बहुत आसान होता है।

दैनिक जागरण

Date:16-12-21

एक जरूरी सुधार

संपादकीय

केंद्र सरकार ने निर्वाचन आयोग की सिफारिशों के आधार पर चुनाव सुधारों को आगे बढ़ाने का फैसला कर एक आवश्यक काम किया है। इनमें सबसे बड़ा सुधार मतदाता पहचान पत्रों को आधार कार्ड से जोड़ने का है। हालांकि फिलहाल यह स्वैच्छिक आधार पर किया जाएगा, लेकिन उम्मीद की जाती है कि आगे चलकर सभी मतदाता पहचान पत्रों को आधार कार्ड से जोड़ने में सफलता मिलेगी। अभी ऐसा इसलिए नहीं किया जा सकता, क्योंकि सुप्रीम कोर्ट ने इससे निजता के अधिकार में हनन होने की बात कही थी। उचित होगा कि सुप्रीम कोर्ट अपने इस दृष्टिकोण पर नए सिरे से विचार करे। बेहतर होगा कि निर्वाचन आयोग और भारत सरकार सुप्रीम कोर्ट से यह अनुरोध करें कि वह मतदाता पहचान पत्रों को आधार कार्ड से जोड़ने की प्रक्रिया को निजता के अधिकार में हनन के रूप में न देखे। आखिर जब पैन कार्ड, राशन कार्ड आदि आधार से जुड़ सकते हैं तो फिर मतदाता पहचान पत्र के साथ भी ऐसा करने में क्या हर्ज है?

नि:संदेह निजता के अधिकार का अपना महत्व है, लेकिन किसी भी अधिकार की तरह वह भी असीम नहीं हो सकता। विडंबना यह है कि अपने देश में एक समूह ऐसा है, जो हर सुधार का विरोध करता है। ऐसे ही एक समूह ने यह माहौल बना रखा है कि यदि मतदाता पहचान पत्रों को आधार से जोड़ा जाता है तो इससे लोगों की निजता का हनन होगा। यह और कुछ नहीं, एक जरूरी सुधार की राह में अड़ंगा लगाने वाला रवैया है। दुर्भाग्य यह है कि कुछ राजनीतिक दल भी यही रवैया अपनाए हुए हैं। ऐसे दलों के साथ-साथ सुप्रीम कोर्ट को इसकी अनदेखी नहीं करनी चाहिए कि निर्वाचन आयोग की ओर से मतदाता पहचान पत्रों को आधार कार्ड से जोड़ने के जो पायलट प्रोजेक्ट चलाए जा रहे हैं, वे बेहद सफल हैं और उनके जरिये फर्जी एवं दोहरे मतदाता पहचान पत्रों की समस्या से पार पाने में मदद मिली है। इसका अर्थ है कि इन पायलट प्रोजेक्ट में शामिल लोगों को वैसी कोई समस्या नहीं, जिसकी ओर सुप्रीम कोर्ट ने इंगित किया था। इससे भी कोई अनभिज्ञ नहीं हो सकता कि देश में फर्जी या दोहरे मतदाता पहचान पत्रों की जो समस्या है, वह चुनावों की निष्पक्षता पर चोट करती है। यह अच्छा हुआ कि सरकार ने निर्वाचन आयोग की सिफारिशों को मंजूरी दे दी, लेकिन अभी चुनाव सुधारों को और आगे बढ़ाने की जरूरत है। इसकी पूर्ति तभी संभव है, जब सत्तापक्ष और विपक्ष में सहमति कायम होगी। सत्तापक्ष और विपक्ष के बीच कम से कम संगीन किस्म के आपराधिक अतीत वालों को तो चुनाव लड़ने से रोकने पर तो सहमति बननी ही चाहिए।

Date:16-12-21

खेती के तौर-तरीकों में बदलाव का वक्त

राजीव कुमार और नीलम पटेल, (राजीव कुमार नीति आयोग के उपाध्यक्ष और नीलम पटेल नीति आयोग की वरिष्ठ सलाहकार हैं)

पिछले पांच दशकों में खाद्य सुरक्षा के लक्ष्य को सफलतापूर्वक हासिल करने के बाद अब समय आ गया है कि भारत अपनी कृषि को पर्यावरण अनुकूल बनाने के साथ-साथ किसानों की आय में निरंतर वृद्धि सुनिश्चित करने के लिए खेती के तौर-तरीकों में बदलाव करे। हरित क्रांति से देश को नि:संदेह खाद्य सुरक्षा प्राप्त हुई है, लेकिन इससे रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और खरपतवारनाशकों के अत्यधिक उपयोग पर निर्भरता बढ़ी है। परिणामस्वरूप पिछले कुछ वर्षो में मृदा जैविक कार्बन (एसओसी) की मात्र में भारी कमी दर्ज की गई है। मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल के अनुसार मृदा में एसओसी की मात्र 1947 में 2.5 प्रतिशत तक मौजूद थी। अब यह देश भर में औसतन 0.4 प्रतिशत के चिंताजनक स्तर पर आ गई है, जो भूमि की उर्वरता बनाए रखने के लिए आवश्यक 1.0-1.5 प्रतिशत की स्वीकार्य सीमा से काफी कम है। इसके लिए उर्वरक के अत्यधिक उपयोग को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है, जो 1969 में 12.4 किग्रा प्रति हेक्टेयर से बढ़कर 2018 में 175 किग्रा प्रति हेक्टेयर हो गया है। इसके अलावा औसत खेत का आकार 1970-71 में 2.28 हेक्टेयर से कम होकर 2015-16 में 1.08 हेक्टेयर हो गया है। छोटे आकार के खेत मशीनीकरण के अनुकूल नहीं होते और इसलिए बड़े आकार की तुलना में कम उत्पादकता प्रदर्शित करते हैं। दो महत्वपूर्ण कारणों-मिट्टी की उर्वरता में गिरावट और छोटे एवं सीमांत खेतों की प्रधानता की वजह से कृषि के औद्योगिक माडल को भारत में क्रियान्वित नहीं किया जा सकता है, जैसा विकसित अर्थव्यवस्थाओं में लागू है।

आज भारतीय कृषि में 89 प्रतिशत भूजल का उपयोग होता है। भारत की पहचान पानी की कमी वाले देश के रूप में की जाती है। देश में प्रति व्यक्ति जल-उपलब्धता 1951 में 5,178 घन मीटर थी, जो 2011 में 1,544 घन मीटर रह गई है। 2050 तक प्रति व्यक्ति जल-उपलबधता कम होकर 1,140 घन मीटर रहने का अनुमान है। बड़ी संख्या में देश के विकास प्रखंड अब भूजल के अत्यधिक दोहन के कारण डार्क जोन बन गए हैं। इसलिए आर्थिक सर्वेक्षण, 2019 में सुझाव दिया गया था कि भूमि उत्पादकता के स्थान पर जल संरक्षण उपायों के माध्यम से सिंचाई जल उत्पादकता पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए।

कृषि को एक ऐसे नए दृष्टिकोण की जरूरत है, जो पोषण सुरक्षा, पर्यावरण संबंधी स्थिरता और भूमि की उत्पादकता के उद्देश्यों के बीच संतुलन स्थापित करे। प्राकृतिक खेती एक संभावित व्यावहारिक तरीके के रूप में उभरी है। प्राकृतिक खेती सभी बाहरी तत्वों के उपयोग को नकारती है और पूरी तरह से मिट्टी की सूक्ष्मजीव आधारित जैव विविधता के संवर्धन एवं फसल प्रणाली से संबंधित प्रबंधन पर निर्भर करती है। खेती का यह तरीका जैव विविधता का संरक्षण करता है और पर्यावरण को रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के प्रतिकूल प्रभावों से बचाता है। इसने मृदा जैविक कार्बन से संबंधित अवयवों में सुधार करने की दिशा में उल्लेखनीय परिणाम दिए हैं। प्राकृतिक खेती दुनिया का सबसे बड़ा कार्बन पृथक्करण कार्यक्रम बनने की क्षमता रखती है। विशेष रूप से हरित आवरण के साथ मृदा जैविक कार्बन में बढ़ोतरी के जरिये प्राकृतिक खेती सिंचाई में होने वाले पानी के उपयोग को 30 प्रतिशत से लेकर 60 प्रतिशत तक कम कर देती है। उत्पादक सामग्रियों की काफी कम लागत के साथ-साथ शून्य रासायनिक इनपुट और उनके उच्च गुणवत्ता वाले उत्पादों के लिए लगातार मिलने वाली बेहतर कीमतों के कारण शुरुआती चरण में भी किसानों की शुद्ध आय में बढ़ोतरी होती है। देश के 11 राज्यों में

खेती के इस तरीके को पहले ही अपना चुके लगभग 30 लाख किसानों का ऐसा ही अनुभव रहा है। 11 राज्यों में 6.5 लाख हेक्टेयर भूमि पर प्राकृतिक खेती सफलतापूर्वक की जा रही है।

वर्तमान में आंध्र प्रदेश और हिमाचल प्रदेश प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने वाले अग्रणी राज्य हैं। आंध्र ने 2024 तक प्राकृतिक खेती को 60 लाख से अधिक किसानों तक पहुंचाने का लक्ष्य रखा है। यहां प्राकृतिक खेती के तहत पांच फसलों (धान, मूंगफली, काला चना, मक्का और मिर्च) की पैदावार में आठ प्रतिशत से लेकर 32 प्रतिशत तक की बढ़ोतरी हुई है। सेंटर फार स्टडी आफ साइंस, टेक्नोलाजी एंड पालिसी द्वारा आंध्र में किए गए अध्ययन में पाया गया कि पारंपरिक खेती को छोड़कर प्राकृतिक खेती को अपनाने पर सिंचित फसल की स्थिति में प्रति एकड़ 1,400-3,500 किलोलीटर पानी एवं 12-50 गीगाजोल ऊर्जा की बचत और कार्बन डाईआक्साइड के उत्सर्जन में 1.4 मीटिक टन से लेकर 6.6 मीटिक टन की कमी हुई है। हिमाचल में हुए इसी तरह के एक अध्ययन में पाया गया कि खेती की लागत में 56 प्रतिशत की कमी के साथ-साथ फसल की पैदावार में 27 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

किसानों की शुद्ध आय बढ़ाने तथा पर्यावरण की रक्षा करने के अलावा प्राकृतिक कृषि पद्धतियां रासायनिक पदार्थों से मुक्त कृषि उत्पादों की बेहतर पैदावार के माध्यम से पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करेंगी। प्राकृतिक खेती भारत को निर्धारित अवधि के भीतर अपने सतत विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने में मदद करेगी, जिससे वैश्विक एजेंडा 2030 को पूरा करने में योगदान मिलेगा। कुल मिलाकर प्राकृतिक खेती किसानों की आजीविका, नागरिकों के स्वास्थ्य, पृथ्वी की दशा और सरकारों के वित्त के लिए भी अच्छी है।

जनसत्ता

Date:16-12-21

सुविधा की सड़क

संपादकीय

उत्तराखंड में चारधाम सड़क परियोजना को सुप्रीम कोर्ट ने मंगलवार को आखिरकार इजाजत दे दी। अब उम्मीद की जानी चाहिए कि इस मसले पर सहमति बन जाएगी। चारधाम सड़क परियोजना के रूप में चल रहे 'आल वेदर राजमार्ग प्रोजेक्ट'को लेकर लंबे समय से विवाद चल रहा था। सवाल था कि अगर प्रस्तावित रूपरेखा के तहत सड़क का निर्माण किया जाता है, तो समूचे इलाके की पारिस्थितिकी पर इसका असर पड़ेगा। मगर सुप्रीम कोर्ट ने सभी पक्षों पर विचार करने के बाद इस परियोजना को मंजूरी दे दी। अब सरकार लगभग बारह हजार करोड़ की इस परियोजना के तहत करीब नौ सौ किलोमीटर तक सड़क के चौड़ीकरण का काम शुरू कर सकेगी। इसके तहत सड़क को दोहरी लेन में बनाया और उसे दस मीटर तक और चौड़ा किया जाना है। एक स्वयंसेवी संगठन की मुख्य आपत्ति यही थी कि अगर इस राजमार्ग की चौड़ाई को इस स्तर तक बढ़ाया जाएगा तो स्थानीय स्तर पर कई चुनौतियां खड़ी हो सकती हैं।

गौरतलब है कि उत्तराखंड के चार प्रमुख तीर्थों- यमुनोत्री, गंगोत्री, बदरीनाथ और केदारनाथ को सड़क मार्ग से जोड़ने के चलते अब इसे चारधाम परियोजना के नाम से जाना जाता है। लेकिन इसकी अहमियत इसलिए है कि देश की सुरक्षा के लिहाज से इसे बेहद संवेदनशील निर्माण के तौर पर देखा जा रहा है। खासकर पिछले कुछ समय से चीन का भारत के प्रति जो रवैया रहा है, उसमें हर स्तर पर सतर्कता बरतना यों भी वक्त की जरूरत है। चारधाम को जोड़ने के समांतर सरकार का मुख्य जोर इसी पहलू पर रहा है कि इस सड़क के जरिए भारत की पहुंच चीन तक और आसान हो जाएगी; किसी भी मौसम में भारतीय सेना चीन से सटी सीमाओं पर पहुंच सकेगी। सरकार की दलील है कि सड़क की चौड़ाई इतनी करने की जरूरत है, जिससे टैंक जैसे बड़े हथियारों को आसानी से सीमा के नजदीक ले जाया जा सके। यानी चीन के रुख को देखते हुए अपनी रक्षा तैयारियों को चौकस और दुरुस्त रखना सरकार का मकसद है। शायद यही वजह है कि सुप्रीम कोर्ट ने इस पक्ष को अहम माना है। लेकिन पर्यावरण के लिहाज से इस मसले पर अलग चिंताएं हैं।

दरअसल, विकास और पर्यावरण से जुड़े सवालों का आपस में टकराव लंबे समय से कायम रहा है। विकास से जुड़ी गतिविधियों के लिए कई बार पर्यावरण को बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है। बाद में खड़े होने वाले पर्यावरण संकट के समय अक्सर विकास के नाम पर की गई बेलगाम निर्माण गतिविधियों पर सवाल उठाया जाता है। इसीलिए अक्सर विकास और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन कायम करने की मांग की जाती रही है। इसमें कोई संदेह नहीं कि चारधाम सड़क परियोजना चीन के संदिग्ध विस्तारवादी रवैये को देखते हुए सामरिक रूप से बेहद महत्वपूर्ण है। लेकिन अगर इससे पर्यावरण या स्थानीय पारिस्थितिकी में कोई अप्रत्याशित जोखिम पैदा होता है, तो इस पक्ष पर भी गौर किया जाना चाहिए। सड़क चौड़ीकरण के लिए जो पेड़ काटे जाएंगे, पहाड़ों में विस्फोट होगा और मलबा फेंका जाएगा, उससे हिमालय की पारिस्थितिकी को नुकसान पहुंच सकता है। यह ध्यान रखने की जरूरत है कि उत्तराखंड पहले ही भूस्खलन और बाढ़ के खतरे के लिहाज से बेहद संवेदनशील माना जाता रहा है। लेकिन सुप्रीम कोर्ट की इजाजत के बाद सरकार को इस परियोजना पर आगे कदम बढ़ाने की सुविधा मिल गई है, फिर भी सामरिक अहमियत से इतर पर्यावरणीय सवालों की भी उसे अनदेखी नहीं करनी चाहिए।

राष्ट्रीय सहारा

Date:16-12-21

सीमा सुरक्षा और पर्यावरण

संपादकीय

उत्तराखंड़ का महत्त्व सिर्फ देवभूमि होने के कारण ही नहीं है अपितु सीमावर्ती इलाका होने के कारण यह भारत की सुरक्षा के लिए भी अहम है। सीमांत इलाकों को जाने वाली सड़कों का हर मौसम में खुला रहना जरूरी होता है जिससे जरूरत

पड़ने पर जरूरी सैन्य सामग्री और आयुध इत्यादि आसानी से मोर्चे पर पहुंचाए जा सकें। इलाके के विकास का भी इससे सीधा संबंध होता है। इसी अहमियत को देखते हुए सुप्रीम कोर्ट ने सामरिक रूप से अहम चारधाम राजमार्ग परियोजना के तहत बन रही सड़कों को दो लेन तक चौड़ा करने की मंजूरी दे दी। न्यायालय ने कहा कि हाल के समय में राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए गंभीर चुनौतियां उत्पन्न हुई हैं। अदालत न्यायिक समीक्षा में सेना की अवसंरचना की जरूरतों का अंदाजा नहीं लगा सकती। सुप्रीम कोर्ट ने अवकाश प्राप्त न्यायमूर्ति एके सीकरी की अध्यक्षता में समिति बनाई है जो परियोजना के संदर्भ में सीधे न्यायालय को रिपोर्ट देगी। लगभग 900 किलोमीटर लंबी चारधाम सड़क परियोजना सामरिक रूप स बेहद महत्वपूर्ण है, जिस पर करीब 12 हजार करोड़ रुपये की लागत आने का अनुमान है। इस परियोजना का उद्देश्य उत्तराखंड के चार पवित्र तीर्थों-यमुनोत्री, गंगोत्री, केदारनाथ और बद्रीनाथ-को हर मौसम में संपर्क प्रदान करना है। निगरानी समिति नये पर्यावरण आकलन पर विचार नहीं करेगी। रक्षा मंत्रालय सशस्त्र बलों की परिचालन जरूरतों को लेकर फैसला करने के लिए अधिकृत है जिनमें जवानों की आवाजाही की सुविधा के लिए अवंसरचना जरूरत भी शामिल है। मंत्रालय द्वारा व्यक्त सुरक्षा चिंताएं समय के साथ बदल सकती हैं। हाल के समय में राष्ट्रीय सुरक्षा के समक्ष गंभीर चुनौतियां उत्पन्न हुई हैं। केंद्र ने शीर्ष अदालत में तर्क दिया था कि अगर सेना मिसाइल लॉन्चर और भारी मशीनरी ही उत्तर की भारत-चीन सीमा तक नहीं ले जा सकेगी तो लड़ाई होने पर कैसे रक्षा करेगी। चार धाम राजमार्ग परियोजना से हिमालयी क्षेत्र में भूस्खलन बढ़ने की चिंता पर सरकार ने कहा कि आपदा को रोकने के लिए सभी जरूरी उपाय किए जाएंगे। सरकार ने तर्क दिया कि देश के कई हिस्सों में भूस्खलन होता है और यह सड़क निर्माण की वजह से नहीं होता। हिमालय प्रकृति के विकास क्रम में सबसे बाद में बनी संरचना है, इसीलिए इसे कमजोर माना जाता है। मानसून के मौसम में उत्तराखंड़ में अक्सर बाढ़, भूस्खलन जैसी घटनाएं होती हैं। वनों की कटाई ने पहाड़ो को और कमजोर कर दिया है। सड़कों के निर्माण के लिए ब्लास्टिंग की जाती है और मलबा नदियों में ड़ाल दिया जाता है। वर्तमान में भी राजमार्गों के निमार्ण के लिए वन संपदा दांव पर लगी है। इन सब बातों का ध्यान रखा जाए तो सीमाएं भी सुरक्षित रहेंगी और पर्यावरण को भी बचाया जा सकेगा।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:16-12-21

आरक्षण के आंकड़े

संपादकीय

अन्य पिछड़ा वर्ग को स्थानीय एवं पंचायत चुनावों में 27 प्रतिशत आरक्षण देने की महाराष्ट्र सरकार की कोशिश पर यदि सुप्रीम कोर्ट ने लगाम लगा दी है, तो कोई आश्चर्य नहीं। दरअसल, कुछ राज्य सरकारों का जो काम करने का रवैया है, उसमें यदा-कदा सुप्रीम कोर्ट के प्रति एक उदासीनता का भाव दिखता है। मोटे तौर पर सुप्रीम कोर्ट को अन्य पिछड़ा वर्ग या ओबीसी को स्थानीय या पंचायत चुनावों में आरक्षण देने पर कोई आपत्ति नहीं है। उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे बडे राज्यों सहित ऐसे कई राज्य हैं, जहां पहले से ही ओबीसी को यह आरक्षण कमोबेश हासिल है। महाराष्ट्र सरकार ने सुप्रीम कोर्ट में अपने फैसले को बचाने की पूरी कोशिश की, लेकिन कोर्ट ने उचित ही अतिरिक्त उदारता दिखाने से इनकार कर दिया।

इसी महीने 6 दिसंबर को कोर्ट ने महाराष्ट्र सरकार के फैसले पर रोक लगा दी थी और अब राज्य सरकार को ओबीसी के लिए 27 प्रतिशत आरक्षित सीटों को जिला परिषद एवं पंचायत समितियों के लिए सामान्य श्रेणी में बदलने व नई अधिसूचना जारी करने का आदेश दिया है। अब राज्य सरकार या तो बिना ओबीसी आरक्षण के चुनाव कराएगी या हो सकता है कि कुछ समय के लिए चुनावों को टाल देगी।

इन दिनों स्थानीय चुनावों में ओबीसी को आरक्षण एक अहम विषय बना हुआ है, लेकिन इससे जुड़े दो-तीन कमजोर पहलुओं पर ध्यान देना चाहिए। अव्वल तो आरक्षण देने के प्रति सरकारों को राजनीतिक वजहों से बहुत जल्दी रहती है। इस जल्दी की वजह से वे विधि-सम्मत समावेशी प्रक्रियाओं का पालन करने के बजाय अध्यादेश का सहारा लेती हैं। महाराष्ट्र सरकार ने भी अध्यादेश का ही सहारा लिया। सुप्रीम कोर्ट ने उसे यथोचित आंकड़े जुटाने के लिए आयोग गठित करने को कहा था। आयोग का गठन तो किया गया, पर उसके लिए कोई बजट पारित नहीं किया गया। इसी वजह से सर्वोच्च अदालत की नाराजगी सामने आई है। इस मामले में दूसरा कमजोर पहलू यह है कि हमारी सरकारों का आंकड़ों से लगाव निरंतर कम हो रहा है। सरकारें इस पक्ष को नजरअंदाज करने लगी हैं कि किसी भी कानून या नीति निर्माण के लिए पुख्ता आंकड़े सबसे जरूरी हैं। सुप्रीम कोर्ट के ताजा फैसले से आंकड़ों की उपयोगिता फिर उजागर हुई है।

तमाम सरकारों को यह समझ लेना चाहिए कि किसी भी वर्ग के लिए पर्याप्त आंकड़ों के बगैर आरक्षण का प्रावधान न हो। ऐसा लगता है कि यह बाध्यता अब हर राज्य में स्थानीय चुनावों पर लागू होगी। हर राज्य को जातिगत आंकड़े रखने पड़ेंगे। सिर्फ अनुमान के आधार पर आरक्षण निर्धारित करने का दौर खत्म होने वाला है। अगर भविष्य के सभी चुनावों पर यह आदेश लागू हुआ, तो जिस वर्ग को जितनी जरूरत है, उतना आरक्षण देने की ओर हम बढ़ चलेंगे। अपने देश में आर्थिक-सामाजिक न्याय केवल चुनावी राजनीति के बूते नहीं हो सकता, इसके लिए तंत्र की अपनी पुख्ता व्यवस्था होनी चाहिए। केंद्र सरकार को इस बाबत एक संविधान सम्मत फॉर्मूला तय करना चाहिए। अलग-अलग राज्य के अलग-अलग जातिगत हालात के हिसाब से जरूरतमंदों को प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। आरक्षण व्यवस्था किसी का अधिकार या संसाधन छीनने का माध्यम न बने, बल्कि इसमें अधिकार व संसाधन जरूरत के हिसाब से साझा करने की शालीनता सुनिश्चित होनी चाहिए।